भारत में समाज और लोक प्रशासन

कमलेश नारायण मिश्र एवं अंजुलता मिश्र

Ikjk'k *कोई भी प्रशासन शून्य में संचालित नहीं हो सकता, इसलिए राज्य और समाज का सम्बन्ध अत्यन्त गहरा और पुख्ता है। भारत एक नव राष्ट्र है, लेकिन इसका समाज अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। इस प्रकार समाज के संस्थान और सामाजिक प्रक्रियाओं का प्रशासनिक संरचनाओं पर और उनकी कार्य शैलियों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। भारत को 1947 में मिली आज़ादी महात्मा गाँधी के नेतृत्व में चलाए गए लम्बे राष्ट्रवादी आंदोलन की भव्य परिणति थी, जिन्होंने पूरे समाज को राष्ट्रीय राजनीति में शामिल किया। सभी आयु, वर्गों, धर्मों, क्षेत्रों और व्यवसायों से जुड़े लोगों ने उनके साथ राष्ट्रीय आंदोलन में योगदान किया। जिससे लोगों को एकजुट करने की अत्याधुनिक कला विकसित हुई। आम आदमी को राजनीतिक स्वतन्त्रता का व्यावहारिक अर्थ समझाने के व्यापक सामाजिक आर्थिक मजबूती का संकल्प अनिवार्य हो गया था। स्वाधीनता ने इन संकल्पों को दोहराने का पहला अवसर प्रदान किया। औपनिवेशिक शासक अपने क्रियाकलाप चलाने के लिए अपने लक्ष्यों को स्पष्ट नही होने देते थे। संक्षेप में उनके शासन के चार लक्ष्य थे, देशक के संकीर्ण अर्थ में कानून और व्यवस्था बनाये रखना, सरकारी खर्च के लिए आवश्यक राजस्व एकत्र करना, सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण अधिकार ब्रिटिश सिविल कर्मियों के हाथ में रखना, और केन्द्र की सर्वोच्च आवश्यकताओं के लिए प्रशासन को अधीन बनाए रखना।*

प्रस्तावना

1947 में भारतीय राजनीतिक नेताओं ने पाँच प्रमुख लक्ष्य निर्धारित किए जिनका सम्बन्ध देश के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक आयामों के साथ था। संक्षेप में ये लक्ष्य निम्नवत थे–

1. भारत में एक मजबूत संसदीय लोकतंत्र की स्थापना करना।
2. ऐसे संघ की निर्माण करना, जिसमें केन्द्र और घटक राज्यों को अपने-अपने कार्यक्षेत्र में स्वायत्तता प्राप्त हो।

3. आत्मनिर्भरता और आत्मसक्षमता पर आधारित सुदृढ़ अर्थव्यवस्था की स्थापना।
4. जाति, लिंग और धर्म के भेदभावों से ग्रस्त समाज में सामाजिक न्याय की व्यवस्था करना।
5. नए लक्ष्यों और मूल्यों के अनुकूल एक व्यवहार्य लोक-प्रशासन की स्थापना करना।

1947 में भारत के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती पश्चिमी उदार लोकतान्त्रिक विचारधारा पर आधारित नए राष्ट्र के निर्माण की थी और उसके साथ ही पूर्व सोवियत-संघ की शासन प्रणाली की तरह ही आर्थिक योजना की अवधारणा को उसमें शामिल करना था। भारतीय संविधान की सभी प्रमुख विशेषताओं को राष्ट्रीय आंदोलन ने तैयार किया था और इस तरह ये विशेषताएँ राष्ट्रीय आंदोलन ने पहले से ही तय कर ली थी। 1928 की नेहरू रिपोर्ट वस्तुतः भारत की संविधान सभा का ही लघु रूप थी, जिसका गठन स्वतंत्र भारत के संविधान का निर्माण करने के लिए किया गया था और जिसने 1947 से 1949 तक इस काम को अंजाम दिया। इसका यह अर्थ नहीं है कि स्वतंत्र भारत की संविधान सभा में कोई संघर्ष न ही हुआ ''कानूनी प्रक्रिया'' और ''कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार'' संविधान सभा में बड़ी जोशीली बहस हुई। संविधान सभा में जो संविधान तैयार किया वह वेस्टमिनिस्टर मॉडल के लोकतंत्र पर आधारित था। इसी प्रकार राष्ट्रीय प्रयास यह रहा कि पश्चिमी राजनीतिक संस्थानों और प्रक्रियाओं को भारतीय सामाजिक वास्तविकताओं के अनुकूल बना लिया जाए। अतः अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया।

राज्य और समाज के बीच अन्तर सम्बन्ध भली-भांति स्थापित तथ्य है। समाज राज्य को और उसके सक्रिय हिस्से लोक प्रशासन को उसी तरह प्रभावित करता है, जिस प्रकार राज्य समाज को प्रभावित करता है।

ब्रिटिश साम्राज्य से विरासत में मिले लोक प्रशासन की ऊपर वर्णित विशेषताओं के अलावा कुछ विशिष्टताएँ और भी हैं, जो इस प्रकार हैः–

1. प्रशासन की मूलभूत इकाई और उसका पीठासीन अधिकारी यानी जिला कलेक्टर उच्च स्तर पर वामसराम का खास नुमाइंदा होता था।
2. केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति प्रशासन की सबसे अहम बात थी। शिक्षा, स्वास्थ्य, सार्वजनिक वित्त, विधि और व्यवस्था, न्याय प्रणाली आदि सभी क्षेत्रों में फैसले केन्द्रीय स्तर पर लिए जाते थे और यही स्वीकृत शाही नीति थी।
3. प्रशासन का प्रमुख आधार सामान्य सिविल सेवा थी, जिसके सदस्य नियमानुसार प्रशासन के सभी क्षेत्रों और सभी स्तरों पर अग्रणी पर संभालते थे, और हालांकि अखिल भारतीय और केन्द्रीय दोनों ही स्तरों पर कुछ और संगठित सेवाएं भी थी किन्तु दोनों के बीच बहुत अंतर रखा गया जिसे कभी दूर नहीं किया जा सकता था।

4. प्रशासन व्यापक नियमों, प्रक्रियाओं और विनियमों पर आधारित था, जो देश भर में फैले अधीनस्थ भारतीय अधिकारियों की बड़ी सेना पर कारगर ढंग से केन्द्रीय नियंत्रण सुनिश्चित करता था।
5. प्रशासन के दोनों स्तरों पर एक विखण्डित प्रणाली संचालित थी, जिसमें नीति निर्माताओं और उसे लागू करने वालों के बीच अलगाव रखा जाता था। इसका अर्थ यह है कि शिखर स्तर पर सचिवालय था, जिसकी भूमिका नीति बनाने की थी जबकि इसका प्रशासन चलाने की जिम्मेदारी अलग कार्यकारी अधिकारियों की थी।

भारतीय संविधान की एक असामान्य विशेषता यह है कि इसमें सिविल सेवा के सदस्यों, यानी समाज के सबसे अधिक शक्तिशाली विशिष्ट वर्ग के हितों और सुरक्षा की निश्चित गारण्टी दी गयी है। अधिकतर समीक्षकों का यह मानना है कि अनुच्छेद 311 के तहत सिविल सेवा के सदस्यों को अत्यधिक सुरक्षा प्रदान की गयी है, जिससे अपराधी को सजा देना बड़ा मुश्किल हो गया है, किन्तु न्यायपालिका सरकार का बचाव करती है। भारत सरकार बनाम तुलसी राम परेतु (1985) मामले में उच्चतम न्यायालय ने सरकार के इस अधिकार को वैध ठहराया कि वह अपने दोषी कर्मचारी को औपचारिक जांच की अपेक्षा पूरी किये बिना और उसे अपनी रक्षा करने का समुचित अवसर दिये बिना बर्खास्त कर सकती है। अनुशासनात्मक कार्यवाही करने वाले अधिकारी के लिये बर्खास्तगी के आदेश में केवल आरोपों का उल्लेख भर करना जरूरी है।

संविधान का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है और इसमें राष्ट्र-निर्माण, राज्य निर्माण और विकास के संस्थानों एवं नीतियों का उल्लेख है। 1947 से 1967 के दौरान भारत में विधायी कार्यों में तीन गुणा से अधिक बढ़ोत्तरी हुई। दो दशक की इस अवधि में कानून की किताबों में लगभग एक हजार छह सौ कानून अंकित हुए, जिनमें 21 संविधान संशोधन, एक सौ से अधिक विनिमय, एक सौ राष्ट्रपति-अधिनियम, और डेढ़ सौ अध्यादेश शामिल थे। किन्तु अकेला संविधान पर्याप्त नहीं है। परिवर्तन और विकास की इन प्रक्रियाओं का शक्तिशाली अथवा कमजोर बनाने में सामाजिक भूमिका है। संविधान समूचे भारत में लागू है और इस प्रकार समूचा देश अपने को इसके आदेशात्मक फ्रेमवर्क के साथ बंधा हुआ महसूस करता है किन्तु समाज बहुसमुदायवादी है, जिसमें अलग-अलग तरह के विश्वासों वाले जनसमूह हैं और सीमित निष्ठा रखने वाले अन्य लोग हैं। ऐसी स्थिति में कभी-कभी झगड़े होना स्वाभामिक है, लेकिन उनका समाधान करने के लिये राजनीतिक प्रक्रियाओं का सहारा लिया जाता है।

पिछले वर्षों में संविधान ने कुल मिलाकर समाज को आधुनिक रूप प्रदान करने की भूमिका निभायी है। आजादी के साथ भारत को अनेक समस्याओं और चुनौतियों का सामना करना पड़ा, जिनका तत्काल समाधान जरूरी था। भारत ने औपनिवेशिक शासन को तिलांजलि देकर उसके स्थान पर एक ऐसी पद्धति स्वीकार की, जो संघीय

प्रणाली के संसदीय लोकतंत्र पर आधारित है और संसद का चुनाव व्यस्क मताधिकार के आधार पर नियमित रूप से कराया जाता है। स्वतंत्र भारत के प्रारम्भिक कार्यों में एक महतवपूर्ण फैसला यह था कि हमने योजनाबद्ध विकास की प्रक्रिया अपनायी और योजनाओं के माध्यम से भरण-पोषण पर आधारित वर्तमान अर्थ-व्यवस्था को औद्योगिक प्रणाली में बदलने का प्रयास किया। गरीबी, बेरोजगारी, गंदगी और अभाव की समस्याओं पर सीधे-सीधे प्रहार किया गया। ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय समाज में अनेक स्तर हैं और नये राष्ट्र को जाति प्रणाली का उन्मूलन करने और संस्थागत भेदभाव करने वाले अन्य समूहों के खिलाफ संघर्ष करने की आवश्यकता है। राष्ट्र को आबादी के उपेक्षित वर्गों की हालत सुधारने की चुनौती का मुकाबला करने का काम तत्काल अपने हाथ में ले लिया था। ये सभी चुनौतियाँ अथवा अधिक सही कहे तो क्रांतियाँ साथ-साथ पूरी हुई है। भारत ने संकल्प व्यक्त किया कि वह विविध प्रकार के इन लक्ष्यों को ऐसे संसदीय लोकतन्त्र के दायरे में हासिल करेगा, जो कानून के शासन, संविधानवाद और न्यायिक समीक्षा पर आधारित हो। यहाँ हमें यह नहीं भूल जाना चाहिये कि संविधान में नागरिकों के मौलिक अधिकारों का भी उल्लेख है और केन्द्र तथा राज्य सरकारें इन अधिकारों के रक्षा कि ये बिना विधान सम्बन्धी गतिविधियाँ नहीं चला सकती। भारत एक महाद्वीपीय आयाम वाला विस्तृत देश है। जहाँ 2011 की जनगणना के अनुसार विभिन्न धर्मों को मानने वाले 121 करोड़ लोग रहते हैं। विश्व के सभी प्रमुख धर्मों के अनुयायी भारत में पाये जाते हैं।

यहाँ बोली जाने वाली भाषाओं की विविधता भी आश्चर्यचकित करती है। अँग्रेजी जानने वाले लोगों का प्रतिशत अभी भी कम है, लेकिन इसमें निरन्तर बढ़ोत्तरी हो रही है। अँग्रेजी प्रभावशाली विशिष्ट जन की भाषा है, जो भारत में सभी शहरी क्षेत्रों में न्यूनाधिक मात्रा में बोली जाती है। भारत की 22 राष्ट्रीय भाषाएँ हैं जिन्हें संवैधानिक मान्यता प्राप्त है और 19,500 बोलियाँ हैं। हालांकि राजभाषा हिन्दी है। अनुसूचित जनजातियों की अपनी बोलियाँ है। समाज असंख्य जातियों और उपजातियों में विभाजित है। यह सब इसलिए बताया जा रहा है कि भारत अधिक मामलों में अनेकवादी समाज है। ध्यान देने की बात है कि भारत में प्रचलित अनेकवाद शासन के लिए पूरी तरह तनाव मुक्त नहीं रहा है। भारत के कुछ हिस्सों में तथाकथित ''जातिवादी-राष्ट्रवाद'' बढ़ रहा है जो राष्ट्र की एकता के प्रति खतरा है। उदाहरण के लिये देश के कुछ भागों में 'जातिवाद' इतना प्रबल हो जाता है कि गणराज्य से अलग होने तक मांग कर दी जाती है। इसके लिये यह जरूरी हो जाता है कि समय-समय पर समायोजन, समझौता और समन्वय स्थापित किया जाय। वास्तव में भारत के अनेक नीति सम्बन्धी निर्णयों को राष्ट्रीय अनिवार्यताओं के संदर्भ में ही सही समझा जा सकता है। भारतीय समाज की वास्तविकता को जाति के संदर्भ के बिना नहीं समझा जा सकता जो भारतीय सामाजिक जीवन की सर्वव्यापी विशेषता है।

जाति भारत में अर्न्तनिहित सामाजिक संस्था है जो कि हिन्दू धर्म की ही विलक्षणता से प्रेरित है। किन्तु अन्य धर्मों की सामाजिक संरचना पर भी जातिवाद का

रंग अलग तरह से छाया हुआ है। जाति एक वंशानुगत समूह है। जाति मूलरूप से जन्म से मृत्यु तक लोगों के सामाजिक व्यवहार को संचालित करती है। इसकी रूढ़ता बहुत गहरी है लेकिन जाति का परम्परागत स्वरूप तेजी से क्षीण होता जा रहा है। यही कारण है कि अन्तरजातीय माजे और विवाह आज असामान्य नहीं रहे हैं। अवधारणात्मक दृष्टि से 'जाति' एक बड़ी सामाजिक व्यवस्था है। लेकिन आधुनिकीकरण की ताकतों के दबाव से इसकी मूलभूत कठोरता कम होती जा रही हैं और सामाजिक मेल मिलाप के प्रतिबंध कम से कम होते जा रहे हैं। समीपवर्ती जातियाँ शक्ति को बढ़ाने के लिए संयुक्त होती जा रही हैं राजनीति ने जातिवाद को एक नया रूप प्रदान किया है और स्वतंत्र भारत में जाति को एक नए ढंग से इस्तेमाल किया जाने लगा है। यह एक शक्तिशाली संगठन बिन्दु के रूप में उभर रही है।

भारतीय समाज के उपेक्षित वर्गों के आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए सरकारें वचन बद्ध है। इस बारे में स्वयं संविधान में भी रचनात्मक भेदभाव की व्यवस्था है। सरकारी नौकरियों में आरक्षण और निर्वाचित विधान मण्डलों (केन्द्रीय और राज्यों के) में सुरक्षित सीटों की व्यवस्था संवैधानिक दृष्टि से शुरू में दस वर्षों के लिए की गई थी लेकिन इसे नियमित रूप से बढ़ाया जाता रहा है। इतना ही नहीं नए सामाजिक-समूहों को आरक्षण की परिधि में लाया गया है और इसका प्रतिशत भी बढ़ाया गया है। शुरू में आरक्षण से सामाजिक परिवर्तन में तेजी आयी किन्तु बाद में इसे अनिश्चित काल तक जारी रखने से सामाजिक तनाव पैदा हुआ, जो कुछ राज्यों में विशेष रूप से देखा गया। जैसा कि पहले कहा गया है भारत ने सामाजिक-आर्थिक योजना व विकास को प्राथमिकता दी है और इस दिशा में उसने संविधान लागू होते ही योजना आयोग का गठन कर लिया था योजना आयोग योजनाएं बनाता है, राष्ट्रीय संसाधनों का मूल्यांकन करता है और योजनाओं को लागू करने के लिये प्रशासन तंत्र का निर्धारण करता है। योजना आयोग के कार्यों के लिये परामर्श और केन्द्र राज्य सहयोग को बढ़ावा देने के लिए एक शिखर संगठन 1952 में बनाया गया जिसके सदस्यों में संघ के सभी 28 राज्यों के मुख्य कार्यकारी शामिल है। योजना आयोग की सहायता के लिये प्रत्येक केन्द्रीय मंत्रालय में योजना सेल (प्रकोष्ठ) और राज्यों में योजना बोर्ड तथा योजना विभाग स्थापित किए गए है। भारत में आयोजन अत्याधिक केन्द्रीकृत है। हालांकि इसे विकेन्द्रीकृत करने और निचले स्तर पर आयोजना तंत्र संरचनागत संचालनगत और वित्तीय दृष्टि से कमजोर है। जिला स्तर की आयोजना 1969 में शुरू की गयी थी लेकिन यह पूरे संकल्प के साथ शुरू नहीं की गयी।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि भारत एक नव राष्ट्र है जिसकी आयु 74 वर्ष हुई है– लेकिन यह देश निश्चित रूप से प्राचीन समुदाय है। प्रस्तुत लेख में देश के सामाजिक राजनीतिक सांस्कृतिक संस्थानों और प्रक्रियाओं तथा इसके लोक प्रशासन के बीच सम्पर्क तथा अंतर-सम्बन्धों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

यह सम्पर्क दो तरफा है। प्रत्येक एक दूसरे को प्रभावित करता है और इस प्रक्रिया के दौरान दोनों आपस में प्रभावित होते हैं।

आजादी के बाद से प्रशासनिक विकास इसी बृहत् राष्ट्रीय संदर्भ में समझा जा सकता है। स्वतन्त्रता के बाद प्रमुख परिवर्तनों को संक्षेप में समझा जा सकता है– (2) भारत में जिले को लम्बे समय से प्रशासन की बुनियादी इकाई समझा जाता रहा है और औपनिवेशिक शासन के दौरान भी यह प्रशासन की समग्र योजनाओं का केन्द्र होता था। जिले के महत्व में कमी आयी है। इसी तरह इसके पीठासीन अधिकारी जिला कलेक्टर का महत्व भी कम हुआ है। जिला प्रशासन को आज जिस सामाजिक और राजनीतिक परिवेश में काम करना पड़ता है वह बदल रहा है और यह प्रवृत्ति लगता है जारी रहेगी औपनिवेश्विक शासन द्वारा बनाया गया संस्थान अपने वास्तविक रूप से कायम नहीं रह सकता लेकिन नयी स्थितियों में सामांजस्य स्थापित करने के लिये उसमें परिवर्तन किए जा सकते है। देश की सिविल सेवा के प्रति भी अविश्वास बढ़ा है और इसके प्रति आम आदमी की आस्था लगातार कम होती जा रही है। इसमें सेवा की भावना कम है और प्रभुत्ववादी प्रवृत्तियों की प्रधानता है। सिविल सेवा को क्षुद्र व्यवसायवाद से ऊपर उठना चाहिये और इसे समुदाय केन्द्रित होना चाहिये। नौकरशाही सभी जगह अधिकार सम्पन्न विशिष्टजनों का वर्ग है और भारत जैसा विकासशील देश इसका अपवाद नहीं है। आम जन की नजरों में सिविल सेवा में व्यापक भ्रष्टाचार है और उच्च स्तर पर भी भ्रष्टाचार राजनीतिक प्रशासनिक स्तर पर है और सूक्ष्म विश्लेषण से पता चलता है कि यह इससे कुछ अधिक है। भारत में भ्रष्टाचार त्रिकोणात्मक है जिसमें राजनीतिक व्यापारी और सिविल कर्मचारी शामिल हैं।

ऐसे में सार्वजनिक आचरण को दुरूस्त करना जरूरी है और इस दिशा में ''लेखपाल'' की नियुक्ति अत्यन्त आवश्यक है। लेकिन अभी यह सम्भव नहीं हुआ है। ब्रिटिश शासन के दौरान उच्च स्तरीय अधिकारी नियमानुसार निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल होते थे। कार्यालय से उन्हें आवश्यक जानकारी उपलब्ध करायी जाती थी। भारतीय प्रशासन में अधिकारी नियमानुसार सीमित अवधि के लिए एक स्थान पर नियुक्ति किए जाते है और इस तरह वे लगातार स्थान्तरित होते रहते हैं जबकि उन्हें आवश्यक जानकारी लिपिकीय कर्मचारियों से मिलती है जो आम तौर पर स्थाई होते हैं। लिपिक अधिकारी को प्रभावित होते हैं। लिपिक अधिकारी को प्रभावित करके अपने हित में फैसले करा लेते है। भारत में नियम और विनियमों की संख्या भी उतनी अधिक है कि अक्सर कहा जाता है कि ''आप मुझे आदमी दिखाइए, मैं उसी के अनुरूप नियम का हवाला दे दूंगा'' प्रशासनिक प्रक्रियाएं इतनी व्यापक हैं और इतनी अधिक है कि उनमें से अधिकांश अपनी उपयोगिता खो चुकी है, किन्तु जड़ता की वजह से वे जारी है। लोक प्रशासन में पारदर्शिता भी जरूरी है क्योंकि गोपनीयता सम्बन्धी प्रचलित नियमों से प्रशासन में भ्रष्टाचार फैलाने वालों को लाभ होता है। अधिकारी को

नियमों और प्रक्रियाओं की पूरी जानकारी नहीं होती। उसमें आम तौर पर उद्यम का अभाव होता है और वह विभागीय नियमों की जानकारी हासिल करने में अधिक रूचि नहीं दिखाता। वह लम्बे समय तक पद पर रहने के प्रति आश्वस्त भी नहीं होता। अगर ऐसा होता तो वह नियमों और प्रक्रियाओं से वाकिफ हो जाता। इस प्रकार वह अनिवार्य रूप से कार्यालय के लिपिकों पर निर्भर रहता है जो छिपे हुए शासक बन जाते हैं। उपरोक्त कुछ अप्रिय स्थितियाँ के बावजूद भारत की उपलब्धियाँ कम प्रभावशाली नहीं है। ध्यान देने की बात है कि विकासशील देशों में भारत का संविधान सबसे प्राचीन है। देश में सही समय पर आम चुनाव कराये जाते हैं। जिसकी अंतर्राष्ट्रीय जगत में प्रशंसा की जाती है। आर्थिक क्षेत्र में भी स्थिति आशाजनक है। अर्थ व्यवस्था उच्च विकास के मार्ग पर अग्रसर है। हालांकि शुरू में वार्षिक वृद्धि दर कमी तीन प्रतिशत से अधिक रिकार्ड नहीं की गयी किन्तु 1990 में आर्थिक उदारीकरण की नीति अपनाये जाने के बाद से वृद्धि दर बढ़कर आठ प्रतिशत के इर्द-गिर्द था, लेकिन नोटबंदी, जी.एस.टी. एवं कोरोना महामारी आदि के कारण आज वृद्धि दर अत्यन्त निचले स्तर पर है। जो बेहद चिंतनीय है।

संदर्भ

1. लोक प्रशासन, अवस्थी और माहेश्वरी लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, 2011, पृ.सं.–48. ISBN- 8185778183.
2. A Hand Book of Public Administration, New York, U.N. 1964, Pg. 5
3. James I perry (ed) Hand book of Public Administration 1989, Pg. 5.
4. Gladden E.N. : An Introduture to Public Administration 2nd ed. Pg. 4.
5. Sharma, M.P : Public Administration Theory and Purchase (Hindi) Pg. 35.
6. Gladden, E.N. : Approaches to Public Administration, London 1966, Pg. 14
7. Development Administration current Approaches & Trends in Public Administration for raction development Pg. 12.
8. Dirrock, Marshall E. Dimock Gladys O, and Koeing, Lows W. Public Administration 1954 Pg. 12.
9. Willoughby W.F. : Primiples of Public Administration, Pg. 1
10. Walker : Journal of Public Administration Vol. X.pp. 397 -408.
11. डॉ. एम.पी. शर्मा और डॉ. बी.एल. सडाना लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार किताब महल इलाहाबाद, 1999.